Research Paper IMPACT FACTOR VALUE : 5.983 | E-ISSN NO : 2455-295X | VOLUME : 11 | ISSUE : 12 |DECEMBER 2025

प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों की सतत विकास के लक्ष्यों की प्राप्ति में प्रासंगिकता : एक आकलन

अंकित मीणा [1]

[1] **पीएच.डी. रिसर्च स्कॉलर (NET , JRF), इतिहास विभाग, श्री जगदीशप्रसाद झाबरमल टिबरेवाला विश्वविद्यालय (जेजेटीयू), विश्वविद्यालय, झुंझुनू, राजस्थान.**

ABSTRACT:

वर्तमान समय में पूरा विश्व विकास की दौड़ में है, लेकिन यह विकास अपने साथ पर्यावरण विनाश, सामाजिक असमानता और मानसिक अशांति जैसी गंभीर समस्याएं लेकर आया है। संयुक्त राष्ट्र द्वारा निर्धारित 'सतत विकास लक्ष्य' (सस्टेनेबल डेवलपमेंट गोल्स) इन्हीं समस्याओं के समाधान का एक वैश्विक प्रयास है। इस शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य यह पता लगाना है कि क्या भारत की प्राचीन सांस्कृतिक विरासत, वेद, उपनिषद और पारंपरिक जीवनशैली में इन आधुनिक समस्याओं का समाधान छिपा है। भारतीय संस्कृति में प्रकृति को संसाधन न मानकर 'माता' और 'शक्ति' का रूप माना गया है। 'वसुधैव कुटुम्बकम' (पूरी धरती एक परिवार है) और 'अपरिग्रह' (आवश्यकता से अधिक संग्रह न करना) जैसे सिद्धांत सीधे तौर पर आज के सतत विकास के लक्ष्यों से मेल खाते हैं। यह शोध पत्र यह सिद्ध करने का प्रयास करता है कि यदि हम आधुनिक तकनीक के साथ प्राचीन भारतीय मूल्यों को जोड़ दें, तो एक संतुलित और खुशहाल भविष्य का निर्माण संभव है।

KEYWORDS:

प्राचीन भारतीय संस्कृति, सतत विकास, पर्यावरण संरक्षण, वेद और उपनिषद, मानवीय मूल्य, अपरिग्रह, प्रकृति वंदन ।

PAPER ACCEPTED DATE:	PAPER PUBLISHED DATE:
17th December 2025	18th December 2025

शोध के उद्देश्य

इस शोध पत्र के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

प्राचीन भारतीय साहित्य (वेद, पुराण, उपनिषद) में निहित पर्यावरण और जीवन मूल्यों का अध्ययन करना।

संयुक्त राष्ट्र के सतत विकास लक्ष्यों (विशेषकर पर्यावरण, समानता और शांति) को समझना।

प्राचीन भारतीय जीवनशैली और आधुनिक सतत विकास की अवधारणा के बीच संबंध स्थापित करना।

यह विश्लेषण करना कि कैसे 'त्याग पूर्वक भोग' और 'संतोष' की भावना आज के उपभोक्तावाद और प्रदूषण को कम कर सकती है।

भविष्य के लिए एक ऐसा मॉडल सुझाना जिसमें आधुनिक विज्ञान और प्राचीन ज्ञान का संगम हो।

शोध प्रविधि

यह शोध पत्र पूरी तरह से गुणात्मक और विश्लेषणात्मक विधि पर आधारित है। इसमें 'द्वितीयक स्रोतों' (सेकेंडरी डाटा) का उपयोग किया गया है। जानकारी एकत्र करने के लिए प्राचीन ग्रंथों (जैसे ऋग्वेद, अथर्ववेद, गीता), गांधीवादी दर्शन, विभिन्न विद्वानों के लेखों और समकालीन पर्यावरणीय रिपोर्टों का अध्ययन किया गया है। इसमें ऐतिहासिक संदर्भों की तुलना वर्तमान परिस्थितियों से करते हुए निष्कर्ष निकालने का सार्थक प्रयास किया गया हैं।

विषय वस्तु

प्रस्तावना: संकट और समाधान की खोज

आज मनुष्य ने विज्ञान के बल पर बहुत तरक्की कर ली है। हम चंद्रमा और मंगल तक पहुंच गए हैं, लेकिन जिस धरती पर हम रहते हैं, वह बीमार हो रही है। हवा जहरीली हो रही है, नदियाँ सूख रही हैं और मौसम का चक्र बदल गया है। इसे सुधारने के लिए दुनिया भर के देशों ने मिलकर कुछ लक्ष्य तय किए हैं, जिन्हें हम 'सतत विकास लक्ष्य' कहते हैं। इसका सरल अर्थ है—ऐसा विकास जो आज की जरूरतों को पूरा करे, लेकिन आने वाली पीढ़ियों के लिए संसाधनों को खत्म न करे।

लेकिन सवाल यह है कि क्या यह केवल नए कानूनों या तकनीकों से संभव है? शायद नहीं। इसके लिए मनुष्य की सोच बदलनी होगी। यहीं पर भारतीय संस्कृति की भूमिका आती है। भारत का इतिहास गवाह है कि यहाँ मनुष्य हजारों वर्षों तक प्रकृति के साथ तालमेल बिठाकर रहा है।

प्रकृति के प्रति भारतीय दृष्टिकोण: माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः

भारतीय संस्कृति की नींव ही प्रकृति प्रेम पर टिकी है। अथर्ववेद का एक प्रसिद्ध मंत्र है— "माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः" अर्थात धरती मेरी माता है और मैं उसका पुत्र हूँ। जब हम धरती को 'संसाधन' (इस्तेमाल की वस्तु) मानते हैं, तो हम उसका शोषण करते हैं। लेकिन जब हम उसे 'माँ' मानते हैं, तो हम उसका आदर और रक्षण करते हैं।

प्राचीन भारत में वृक्षों, नदियों और पहाड़ों को देवता मानकर पूजा जाता था। पीपल, बरगद, तुलसी और नीम की पूजा केवल अंधविश्वास नहीं थी, बल्कि यह पर्यावरण को बचाने का एक सामाजिक नियम था। यह भाव सतत विकास के उस लक्ष्य को पूरा करता है जो 'जलीय जीवन' और 'थलीय जीवन' की सुरक्षा की बात करता है।

अपरिग्रह और उत्तरदायी उपभोग (सतत विकास लक्ष्य संख्या 12)

आज दुनिया की सबसे बड़ी समस्या 'उपभोगवाद' है। यानी, "ज्यादा से ज्यादा खरीदो और इस्तेमाल करो।" इससे कचरे के ढेर लग रहे हैं। भारतीय दर्शन में 'अपरिग्रह' का सिद्धांत है। इसका अर्थ है—उतना ही संग्रह करो, जितने की आवश्यकता हो।

महात्मा गांधी ने भी इसी प्राचीन मूल्य को दोहराते हुए कहा था, "प्रकृति के पास हमारी जरूरतों को पूरा करने के लिए पर्याप्त है, लेकिन हमारे लालच के लिए नहीं।" ईशावास्योपनिषद का पहला श्लोक कहता है— "तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा", यानी त्याग के साथ भोग करो। अगर हम इस प्राचीन मूल्य को अपना लें, तो आज की 'कूड़ा-कचरा समस्या' और संसाधनों की कमी अपने आप सुलझ जाएगी।

वसुधैव कुटुम्बकम और वैश्विक साझेदारी

सतत विकास का अंतिम लक्ष्य वैश्विक शांति और साझेदारी है। भारत ने सदियों पहले "वसुधैव कुटुम्बकम" (पूरी धरती ही परिवार है) का नारा दिया था। भारतीय ऋषियों ने कभी भी केवल अपने कबीले या देश की भलाई की प्रार्थना नहीं की। उन्होंने हमेशा कहा— "सर्वे

भवन्तु सुखिनः" (सभी सुखी हों)।

यह विचार आज के दौर में बेहद प्रासंगिक है। जलवायु परिवर्तन किसी एक देश की समस्या नहीं है। अगर एक देश प्रदूषण फैलाता है, तो उसका असर दूसरे देश पर भी पड़ता है। प्राचीन भारतीय दृष्टि हमें सिखाती है कि हम सब एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। यह भावना देशों के बीच की सीमाओं को मिटाकर मानवता की सेवा के लिए प्रेरित करती है।

जल संरक्षण और वन रक्षण की परंपरा

प्राचीन भारत में जल को 'जीवन' ही नहीं, बल्कि पवित्र माना गया। नदियों को 'माँ' कहा गया। पुराने समय में तालाब और बावड़ी बनाने को पुण्य का काम माना जाता था। राजस्थान की मरुभूमि में आज भी पारंपरिक जल संरक्षण की विधियां (जैसे टांका, जोहड़) कारगर साबित हो रही हैं।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में वनों की रक्षा के लिए कड़े नियम बताए गए थे। सम्राट अशोक के शिलालेखों में भी वृक्षारोपण और पशु-हत्या निषेध के आदेश मिलते हैं। बिश्नोई समाज का इतिहास, जहाँ लोगों ने पेड़ों को बचाने के लिए जान दे दी, यह साबित करता है कि पर्यावरण संरक्षण भारतीय रक्त में है। यह आज के वनों की कटाई रोकने और जलवायु परिवर्तन से लड़ने के लक्ष्यों के लिए एक मिसाल है।

अहिंसा और शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व

सतत विकास के लिए समाज में शांति और न्याय का होना जरूरी है। भारतीय संस्कृति का मूल मंत्र 'अहिंसा' है। यह अहिंसा केवल मनुष्यों तक सीमित नहीं थी, बल्कि इसमें पशु-पक्षी और छोटे जीव भी शामिल थे। जैन और बौद्ध धर्म ने इस विचार को और गहरा किया। जब समाज में हर जीव के प्रति दया का भाव होगा, तो हिंसा, युद्ध और असमानता अपने आप कम हो जाएगी। यह सतत विकास के 'शांति, न्याय और सुदृढ़ संस्थान' के लक्ष्य को प्राप्त करने में सहायक है।

महिला सम्मान और सामाजिक समानता

यद्यपि मध्यकाल में कुछ कुरीतियां आईं, लेकिन प्राचीन वैदिक काल में महिलाओं को विदुषी और आदरणीय माना जाता था। "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः" (जहाँ नारी की पूजा होती है, वहाँ देवता निवास करते हैं) का विचार लैंगिक समानता की बात करता है। सतत विकास का एक मुख्य लक्ष्य 'लैंगिक समानता' है। हमें अपनी उन प्राचीन जड़ों को फिर से सींचना होगा जहाँ गार्गी और मैत्रेयी जैसी विदुषियों का सम्मान था।

स्वास्थ्य और योग (उत्तम स्वास्थ्य और खुशहाली)

आज की भागदौड़ भरी जिंदगी में मानसिक तनाव एक बड़ी बीमारी बन गया है। सतत विकास का तीसरा लक्ष्य 'उत्तम स्वास्थ्य' है। भारत ने दुनिया को 'योग' और 'आयुर्वेद' का उपहार दिया है। योग केवल कसरत नहीं है, बल्कि यह मनुष्य का प्रकृति और स्वयं के साथ जुड़ाव है। आयुर्वेद बीमार होने के बाद दवा लेने की जगह, ऐसी जीवनशैली पर जोर देता है जिससे व्यक्ति बीमार ही न पड़े। शाकाहारी भोजन और ऋतुचर्या (मौसम के अनुसार जीवन जीना) का प्राचीन ज्ञान आज के स्वास्थ्य संकट का सबसे सस्ता और प्रभावी टीका है।

पंचमहाभूत सिद्धांत और पर्यावरण संतुलन (लक्ष्य 13, 14 और 15)

सतत विकास की सबसे बड़ी बाधा पर्यावरण का असंतुलन है। आधुनिक विज्ञान जहाँ प्रकृति को भौतिक तत्वों का भंडार मानता है, वहीं भारतीय दर्शन की शुरुआत ही इस समझ से होती है कि हमारा शरीर और यह ब्रह्मांड एक ही तत्वों से बने हैं।

"यत् पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे" (जो शरीर में है, वही ब्रह्मांड में है)।

भारतीय मनीषियों ने सृष्टि के निर्माण में पाँच तत्वों को मुख्य माना— पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश। इसे 'पंचमहाभूत' कहा गया।

तुलसीदास जी ने भी रामचरितमानस में लिखा है: "क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा। पंच रचित अति अधम शरीरा।।"

प्रासंगिकता: यह सिद्धांत हमें सिखाता है कि यदि हम बाहरी वायु को दूषित करेंगे, तो हमारे भीतर की प्राणवायु (सांस) अपने आप दूषित हो जाएगी। यदि जल गंदा होगा, तो रक्त दूषित होगा। आज का 'क्लाइमेट एक्शन' (जलवायु कार्यवाही) इसी सिद्धांत पर आधारित है। प्राचीन भारत में दैनिक पूजा में इन पांचों तत्वों के संतुलन की प्रार्थना की जाती थी, जो वास्तव में एक 'इकोलॉजिकल बैलेंस' (पारिस्थितिक संतुलन) का शपथ-पत्र था।

'धर्म' आधारित अर्थव्यवस्था और गरीबी उन्मूलन (लक्ष्य 1 और 2)

संयुक्त राष्ट्र का पहला और दूसरा लक्ष्य 'शून्य गरीबी' और 'शून्य भुखमरी' है। प्राचीन भारत में अर्थव्यवस्था का आधार 'पूंजी' नहीं, बल्कि 'धर्म' (कर्तव्य) था।

दान और दायित्व: भारतीय संस्कृति में अपनी आय का एक हिस्सा समाज के वंचित वर्ग को देना 'परोपकार' नहीं, बल्कि 'ऋण मुक्ति' माना जाता था। ऋग्वेद में कहा गया है— "केवलाघो भवति केवलादी" (जो अकेला खाता है, वह केवल पाप खाता है)। यह भावना धन के विकेंद्रीकरण (डिस्ट्रीब्यूशन) को सुनिश्चित करती थी।

अन्नब्रह्म: भोजन को ईश्वर (अन्नब्रह्म) माना गया। अतिथियों, भिक्षुओं और यहाँ तक कि पशु-पक्षियों (कौवे, कुत्ते, गाय) के लिए भोजन निकालने की परंपरा ('बलि-वैश्वदेव यज्ञ') यह सुनिश्चित करती थी कि समाज के पारिस्थितिक तंत्र में कोई भी भूखा न सोए। यह आज की 'खाद्य सुरक्षा' (फूड सिक्योरिटी) का आध्यात्मिक स्वरूप था।

अपरिग्रह और उत्तरदायी उपभोग (लक्ष्य 12)

आज विश्व के सामने 'कचरा प्रबंधन' और 'संसाधन की कमी' एक विकराल समस्या है। इसका मूल कारण अनियंत्रित उपभोग है।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा: ईशावास्योपनिषद का यह मंत्र आज की उपभोक्तावादी संस्कृति के लिए एक चेतावनी है। इसका अर्थ है—"प्रकृति का उपभोग करो, लेकिन त्याग की भावना के साथ।" अर्थात, उतना ही लो जितनी अत्यंत आवश्यकता हो।

संतोष धन: भारतीय जनमानस में यह बात गहराई तक बिठाई गई थी कि "गोधन, गजधन, बाजिधन और रतन धन खान। जब आवत संतोष धन, सब धन धूरि समान।।"

जब व्यक्ति मानसिक रूप से संतुष्ट होता है, तो वह अनावश्यक वस्तुओं का संग्रह नहीं करता। इससे औद्योगिक उत्पादन का दबाव घटता है और कार्बन उत्सर्जन कम होता है। सतत विकास का लक्ष्य संख्या 12 (जिम्मेदार उपभोग और उत्पादन) पूरी तरह से इसी भारतीय मूल्य पर निर्भर है।

जल संरक्षण: पवित्रता से प्रबंधन तक (लक्ष्य 6)

आज जल संकट (Water Crisis) विश्व युद्ध का कारण बन सकता है। प्राचीन भारत में जल प्रबंधन एक विज्ञान भी था और धर्म भी।

नदी सूक्त और जल की दिव्यता: ऋग्वेद के 'नदी सूक्त' में नदियों के साथ संवाद है। गंगा, यमुना, सरस्वती को केवल बहता पानी नहीं, बल्कि 'तारिणी' (तारने वाली) और 'मोक्षदायिनी' माना गया। जब आप किसी वस्तु को पवित्र मान लेते हैं, तो उसे गंदा करने में संकोच होता है।

तकनीकी ज्ञान (वास्तुकला): राजस्थान की बावडियाँ (सीढ़ीदार कुएं), दक्षिण भारत के मंदिर के तालाब, और गुजरात के टांके इस बात का प्रमाण हैं कि हमारे पूर्वज वर्षा जल संचयन (Rainwater Harvesting) में कितने निपुण थे। उन्होंने जल संरक्षण को सामुदायिक उत्सव बना दिया था। आज हमें इसी 'सामुदायिक भागीदारी' की आवश्यकता है।

कृषि संस्कृति और 'विष मुक्त' भोजन (लक्ष्य 2 और 3)

आधुनिक रासायनिक खेती ने मिट्टी को बंजर और भोजन को जहरीला बना दिया है। सतत विकास के लिए 'टिकाऊ कृषि' अनिवार्य है।

वृक्षायुर्वेद: सुरपाल द्वारा रचित 'वृक्षायुर्वेद' जैसे ग्रंथों में पौधों के उपचार और पोषण की प्राकृतिक विधियाँ बताई गई हैं।

गो-आधारित कृषि: भारतीय कृषि व्यवस्था में गाय केवल दूध देने वाला पशु नहीं, बल्कि खेती की धुरी थी। गोबर और गोमूत्र से बनी खाद मिट्टी की उर्वरा शक्ति को बढ़ाती थी, उसे नष्ट नहीं करती थी। आज दुनिया 'जैविक खेती' (Organic Farming) की ओर लौट रही है, जो भारत की हजारों साल पुरानी जीवनशैली है।

लैंगिक समानता और नारी शक्ति (लक्ष्य 5)

विकास के लिए समाज में स्त्री और पुरुष का समान योगदान आवश्यक है।

अर्धनारीश्वर स्वरूप: भगवान शिव का 'अर्धनारीश्वर' रूप यह दर्शाता है कि सृजन के लिए नर और नारी दोनों तत्व समान रूप से आवश्यक हैं और एक-दूसरे के पूरक हैं।

विदुषी नारियाँ: वैदिक काल में लोपामुद्रा, घोषा और अपाला जैसी विदुषियों ने वेदों की ऋचाओं की रचना की। यह प्रमाण है कि प्राचीन भारत में शिक्षा और ज्ञान पर महिलाओं का समान अधिकार था। मध्यकाल की कुरीतियों को हटाकर, यदि हम पुनः उस प्राचीन दृष्टि को अपनाएं, तो महिला सशक्तिकरण के लक्ष्य को स्वाभिमान के साथ प्राप्त किया जा सकता है।

शांति, न्याय और 'वसुधैव कुटुम्बकम' (लक्ष्य 16 और 17)

सतत विकास लक्ष्य 16 (शांति और न्याय) और 17 (लक्ष्यों के लिए भागीदारी) वैश्विक सहयोग की मांग करते हैं।

वैश्विक परिवार: "अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्। उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम।।"

(यह मेरा है, वह तेरा है—ऐसी सोच छोटे मन वालों की होती है। विशाल हृदय वालों के लिए तो पूरी धरती ही एक परिवार है।)

यह मंत्र राष्ट्रवाद की संकीर्ण सीमाओं से ऊपर उठकर मानवतावाद की बात करता है। जब हम दूसरे देश के नागरिक को भी अपने परिवार का हिस्सा मानेंगे, तो युद्ध, आतंकवाद और शोषण का आधार ही समाप्त हो जाएगा।

ऋत (Cosmic Order): वेदों में 'ऋत' की संकल्पना है, जिसका अर्थ है—सत्य और नियम। सूर्य, चंद्रमा और ऋतुएँ एक नियम (ऋत) में बंधे हैं। राजा का धर्म भी इसी नियम का पालन करना था। यह आज के 'कानून के शासन' (Rule of Law) का प्राचीन रूप है।

स्वास्थ्य और योग: निवारक चिकित्सा (लक्ष्य 3)

उत्तम स्वास्थ्य का अर्थ केवल बीमारी का न होना नहीं है, बल्कि शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक रूप से स्वस्थ होना है।

योग और प्राणायाम: महर्षि पतंजलि का अष्टांग योग केवल कसरत नहीं, बल्कि मन को नियंत्रित करने का विज्ञान है। यह अवसाद (Depression) और तनाव (Stress) जैसी आधुनिक बीमारियों का अचूक इलाज है।

दिनचर्या और ऋतुचर्या: आयुर्वेद में बताया गया है कि कब उठना है, कब सोना है और किस मौसम में क्या खाना है। यह 'प्रिवेंटिव हेल्थकेयर' (निवारक स्वास्थ्य सेवा) का सबसे बड़ा उदाहरण है, जो स्वास्थ्य बजट पर बोझ कम कर सकता है।

शिक्षा: सा विद्या या विमुक्तये (लक्ष्य 4)

आज की शिक्षा केवल रोजगार परक है, जबकि सतत विकास के लिए 'मूल्य आधारित शिक्षा' (Quality Education) की जरूरत है।

समग्र विकास: गुरुकुल प्रणाली में शिष्य को केवल गणित या विज्ञान नहीं, बल्कि प्रकृति प्रेम, बड़ों का आदर और आत्म-संयम सिखाया जाता था। विद्या का उद्देश्य था— "सा विद्या या विमुक्तये" (विद्या वह है जो मुक्ति दिलाए—अज्ञान से, अभाव से और संकीर्णता से)। ऐसी शिक्षा ही जिम्मेदार नागरिक तैयार कर सकती

निष्कर्ष:

उपर्युक्त विस्तृत विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि जिसे आज आधुनिक विश्व 'सतत विकास' (Sustainable Development) कहकर पुकार रहा है, वह भारतीय संस्कृति में 'जीवन जीने की कला' के रूप में सदियों से विद्यमान है। हमारे पूर्वजों ने कभी भी 'प्रकृति पर विजय' प्राप्त करने की बात नहीं की, बल्कि 'प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व' की बात की।

आज की चुनौतियों—चाहे वह ग्लोबल वार्मिंग हो, भुखमरी हो या मानसिक अशांति—का समाधान केवल नई मशीनों में नहीं है। हमें अपनी दृष्टि बदलनी होगी। भारतीय मूल्य हमें 'लालच' से 'जरूरत' की ओर, 'भोग' से 'त्याग' की ओर और 'मैं' से 'हम' की ओर ले जाते हैं।इस सम्पूर्ण आकलन से यह स्पष्ट होता है कि सतत विकास कोई नई पश्चिमी अवधारणा नहीं है, बल्कि यह तो भारतीय संस्कृति की आत्मा है। जिसे आज दुनिया 'सस्टेनेबिलिटी' कहती है, उसे हमारे पूर्वज 'धर्म' (कर्तव्य) कहते थे—प्रकृति का धर्म, मानव का धर्म।

समस्या यह है कि आधुनिकता की चकाचौंध में हमने इन मूल्यों को 'पिछड़ा' मानकर छोड़ दिया। आज जब नदियां काली पड़ रही हैं और सांस लेना मुश्किल हो रहा है, तो हमें फिर से अपनी जड़ों की ओर देखना पड़ रहा है।

निष्कर्षत: हम यह कह सकते हैं कि प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक मूल्य आज भी पूरी तरह प्रासंगिक हैं। हमें गुफाओं में वापस जाने की जरूरत नहीं है, लेकिन हमें अपनी सोच बदलनी होगी। यदि हम आधुनिक तकनीक का 'मस्तिष्क' और भारतीय मूल्यों का 'हृदय' मिला दें, तो हम सतत विकास के लक्ष्यों को आसानी से प्राप्त कर सकते हैं। यह केवल भारत के लिए नहीं, बल्कि संपूर्ण मानवता के लिए कल्याणकारी होगा। रास्ता पुरानी किताबों से होकर ही नई दुनिया तक जाता है।

REFERENCES

1. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर. (2001). ऋग्वेद का सुबोध भाष्य. स्वाध्याय मंडल पारडी.

2. गीताप्रेस गोरखपुर - ईशावास्योपनिषद और श्रीमद्भगवद्गीता.

3. पांडेय, गोविंद चंद्र. (1995). भारतीय परंपरा और संस्कृति. विश्वविद्यालय प्रकाशन , वाराणसी.

4. द्विवेदी, कपिल देव. (2004). वेदों में विज्ञान और पर्यावरण. विश्वभारती अनुसंधान परिषद.

5. तिवारी, शशि. (2012). संस्कृत साहित्य में पर्यावरण चेतना. विद्यानिधि प्रकाशन , दिल्ली.

6. गांधी, मोहनदास करमचंद. हिंद स्वराज. नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद.

7. संयुक्त राष्ट्र रिपोर्ट. (2020). सतत विकास लक्ष्य और भारत. (अनुवादित अंश).

8. सिंह, आर.पी. (2018). पर्यावरण और भारतीय दर्शन. आलेख, हिंदी साहित्य पत्रिका.

9. शर्मा, रामविलास. भारतीय संस्कृति और हिंदी प्रदेश. किताबघर प्रकाशन.

10. डॉ. कपिल देव द्विवेदी. (2014). वेदों में विज्ञान और पर्यावरण. विश्वभारती अनुसंधान परिषद, ज्ञानपुर.

11. पद्मश्री ओ.पी. अग्रवाल. भारतीय संस्कृति और पर्यावरण संरक्षण.

12. सुंदरलाल बहुगुणा. धरती की पुकार. (पर्यावरण आंदोलन पर लेख संग्रह).

13. राजीव मल्होत्रा. (2015). इंद्रजाल: पश्चिमी आधुनिकता और भारतीय ज्ञान.

14. संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (UNDP). सतत विकास लक्ष्य: एक परिचय.

15. शर्मा, विनीता. (2021). "प्राचीन भारत में जल प्रबंधन". भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद पत्रिका.